ISSN 2277-5897 SABLOG
PEER REVIEWED JOURNAL

145

लोक चेतना का राष्ट्रीय मासिक

सबलोग

मार्च 2026 • ₹ 50

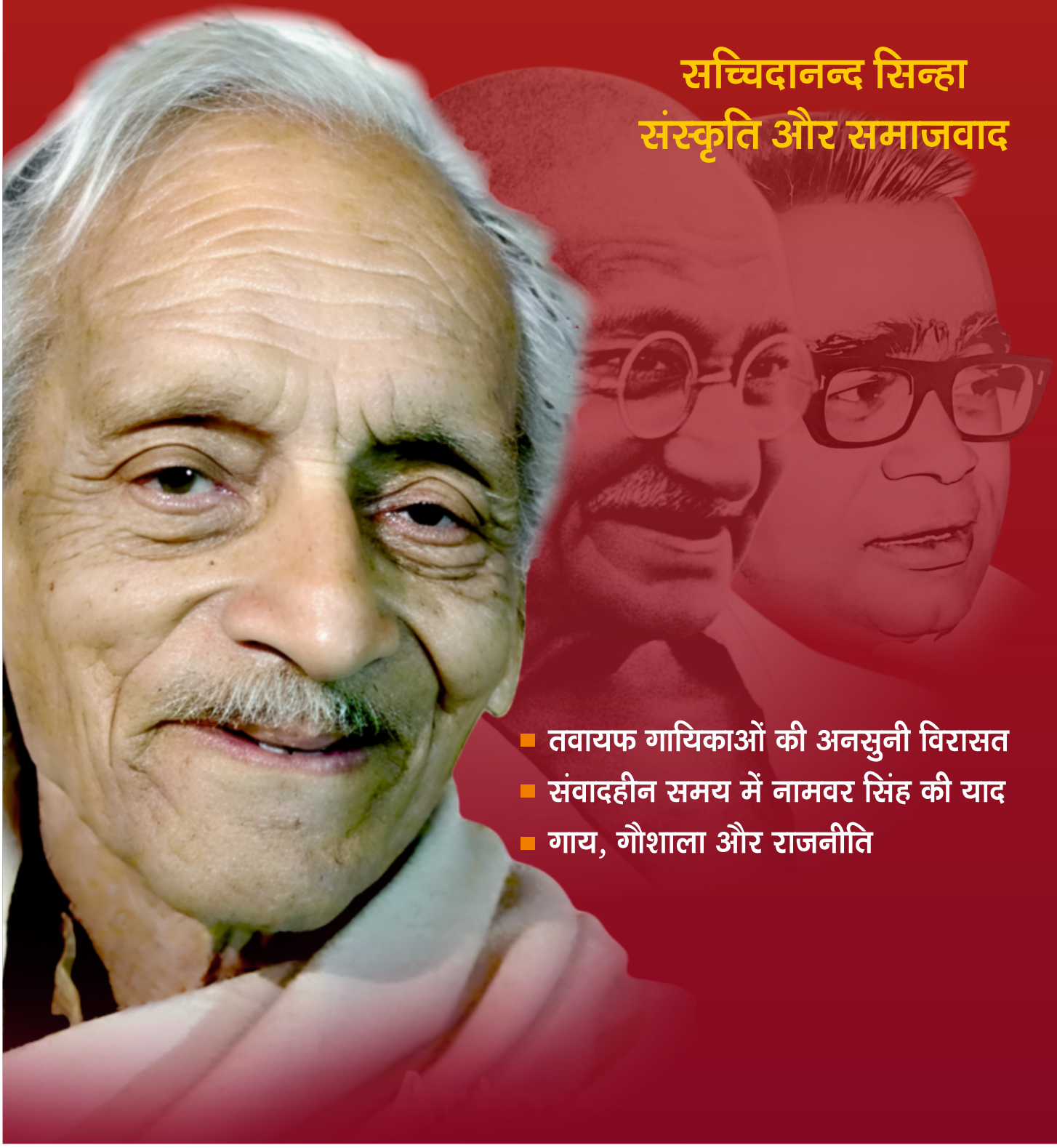

सच्चिदानन्द सिन्हा
संस्कृति और समाजवाद

- तवायफ गायिकाओं की अनसुनी विरासत
- संवादहीन समय में नामवर सिंह की याद
- गाय, गौशाला और राजनीति

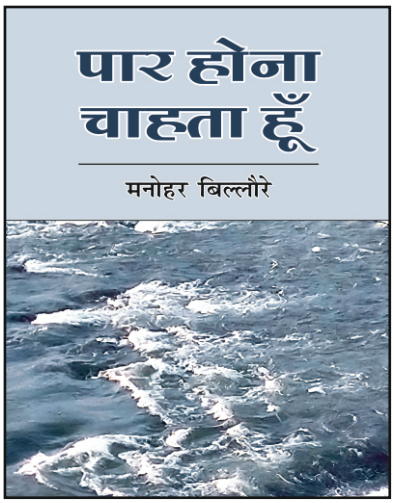

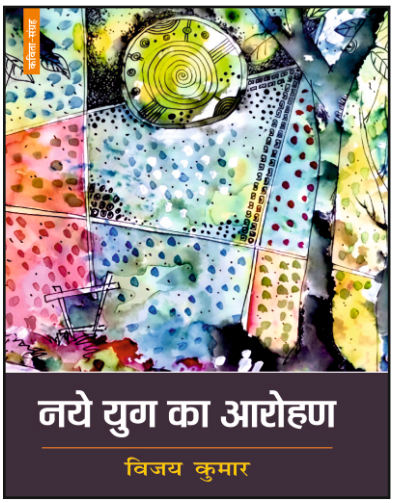

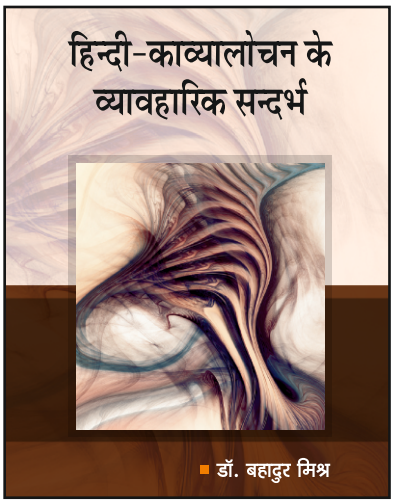

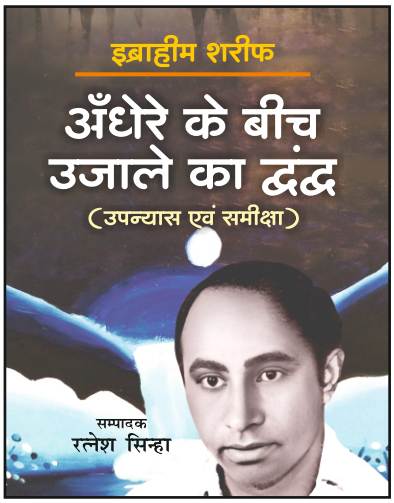

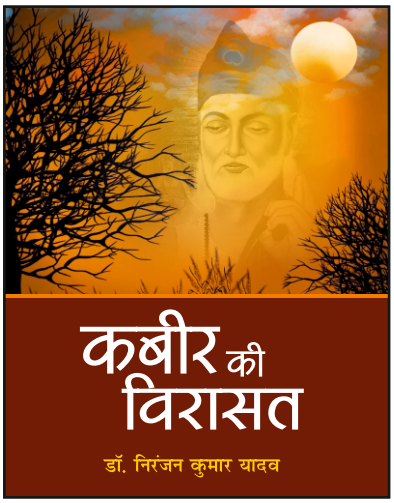

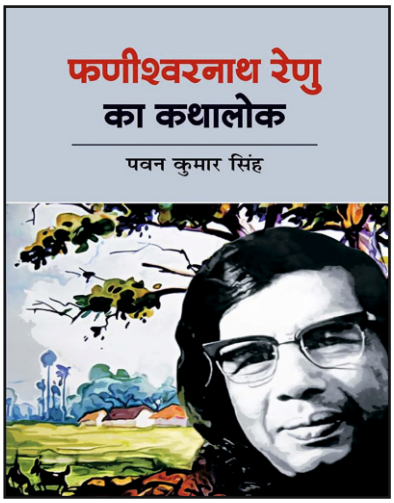

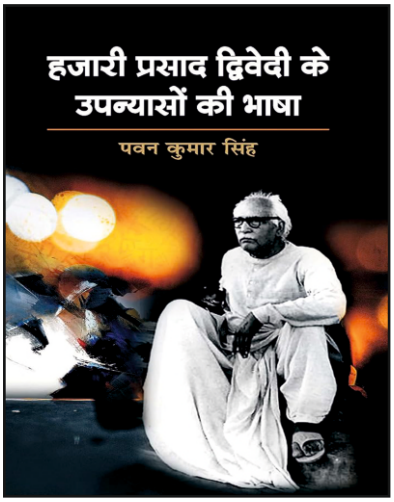

Available at : amazon.in

रचनाकार पब्लिशिंग हाउस

D-18, Gali No.9, Jagatpuri Extn., Delhi
9910143493
Rachnakarpublishing House
rachnakarpublishinghouse@gmail.com
rachnakar publishing house

सबलोग-145

वर्ष 17, अंक 3, मार्च 2026

ISSN 2277-5897 SABLOG

PEER REVIEWED JOURNAL

www.sablog.in

सम्पादक

किशन कालजयी

संयुक्त सम्पादक

प्रकाश देवकुलिश

राजन अग्रवाल

उप-सम्पादक

गुलशन चौधरी

समीक्षा समिति

(Peer Review Committee)

आनन्द कुमार

रत्नेश्वर मिश्र

मणीन्द्र नाथ ठाकुर

मंजु रानी सिंह

सफदर इमाम कादरी

प्रमोद मीणा

राजेन्द्र रवि

मधुरेश

महादेव टोप्पो

विजय कुमार

आशा

सन्तोष कुमार शुक्ल

अखलाक 'आहन'

अभय सागर मिंज

सम्पादकीय सम्पर्क

बी-3/44, तीसरा तल, सेक्टर-16,
रोहिणी, दिल्ली-110089

+918340436365

sablogmonthly@gmail.com

सदस्यता शुल्क

एक अंक : 50 रुपये

वार्षिक : 1100 रुपये रजिस्टर्ड डाक से

सबलोग

खाता संख्या-49480200000045

बैंक ऑफ बड़ौदा,
शाखा-बादली, दिल्ली

IFSC-BARB0TRDBAD
(Fifth Character is Zero)

स्वामी, सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक किशन कालजयी द्वारा बी-3/44, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089 से प्रकाशित और लक्ष्मी प्रिण्टर्स, 556 जी.टी. रोड शाहदरा दिल्ली-110032 से मुद्रित।

पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, उनसे सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

पत्रिका अव्यावसायिक और सभी पद अवैतनिक।

पत्रिका से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए न्यायक्षेत्र दिल्ली।

संवेद फाउण्डेशन का मासिक प्रकाशन

सच्चिदानन्द सिन्हा, संस्कृति और समाजवाद

मुनादी / युद्ध के समय में निहत्था पैगम्बर : **किशन कालजयी** 4

एक बड़े विद्वान सन्त का जाना : **अरविन्द मोहन** 6

गाँधीयन-ट्रॉट्स्काइट थे सच्चिदानन्द सिन्हा : **घनश्याम** 9

ज्ञान-साधना के जन-मार्ग का राही : **प्रेम सिंह** 11

स्वतन्त्रता संघर्ष का रोमांचक आख्यान : **अच्युतानन्द किशोर नवीन** 14

समाजवाद, कला और मानवीय चेतना का समन्वय : **रामजय प्रताप** 16

समाजवाद, कला और मनुष्य के भविष्य की खोज : **अनीश अंकुर** 18

अवधारणाओं के इतिहास में विकास : **दिव्यानन्द** 21

सादगी, ज्ञान और लोकतान्त्रिक जीवन की जीवित मिसाल : **प्रीतीश आचार्य** 23

एक सायेदार दरख्त की छाँव में : **प्रशान्त कुमार सिन्हा** 26

साक्षात्कार

तवायफ गायिकाओं की अनसुनी विरासत
सोमा बनर्जी से **अलका तिवारी** की बातचीत 27

देश

कर्णाटक / संघीय भारत में राज्य स्वायत्तता : **संध्या चतुर्वेदी** 29

हरियाणा / हक की नयी हुँकार : **अजय सिंह** 32

स्तम्भ

चतुर्दिक / संवादहीन समय में नामवर सिंह की याद : **रविभूषण** 34

तीसरी घण्टी / मुख्यधारा रंगमंच का ब्राह्मणवादी चरित्र : **राजेश कुमार** 38

यत्र-तत्र / एक कवि-गद्यकार की भाषा-संवेदना : **जय प्रकाश** 41

देशान्तर / बाँग्लादेश में नयी सरकार : **धीरंजन मालवे** 44

परती परिकथा / बंगाल की राजनीति के पुराने पन्ने : **हितेन्द्र पटेल** 47

विविध

सामयिक / यूपीएससी में बदलता समाजशास्त्र : **प्रेमपाल शर्मा** 50

शहरनामा / गाय, गौशाला और राजनीति : **राजेन्द्र रवि** 52

सिनेमा / पिया का 'घर - घरौन्दा कहाँ' : **रक्षा गीता** 55

लिये लुकाठी हाथ / तानाशाही नहीं चलेगी : **नूपुर अशोक** 58

रंगसाज / मौत से पहले 400 फ्रैंक : **देव प्रकाश चौधरी** 59

आवरण : शशिकान्त सिंह

अक्षर संयोजन: आशीष कुमार पाठक

अगला अंक : सामाजिक न्याय का वर्तमान

युद्ध के समय में निहत्था पैगम्बर

सच्चिदानन्द सिन्हा का लेखन भारतीय बौद्धिक परम्परा में एक अनूठी और चुनौतीपूर्ण जगह रखता है। वे उन विरले चिन्तकों में हैं जिन्होंने कला, संस्कृति, समाजवाद, राष्ट्रवाद, कृषि, शहरीकरण और सत्ता–इन सभी आयामों को अलग नहीं, बल्कि एक ही सभ्यतागत संकट की अभिव्यक्तियों के रूप में देखा। उनकी पुस्तकों को क्रमबद्ध रूप से पढ़ना, आधुनिक मानव सभ्यता की यात्रा को समझने के समान है–जहाँ उपलब्धियाँ, भ्रम और आत्मघाती रास्ते एक दूसरे के साथ गहरे जुड़ते हैं।

आज की दुनिया एक ऐसे मोड़ पर खड़ी है जहाँ युद्ध अपवाद नहीं, बल्कि सामान्य भाषा बनता जा रहा है। यूक्रेन से लेकर गाजा और मध्य-पूर्व तक, एशिया से अफ्रीका तक–हिंसा केवल सीमाओं पर नहीं, बल्कि मानव विवेक के भीतर फैल रही है। अमेरिका-इजराइल और ईरान के युद्ध से पूरी दुनिया काँप रही है और राष्ट्रों की प्रतिष्ठा अब नैतिक साहस से नहीं, सैन्य शक्ति से आँकी जाती है। मिसाइलें विकास का प्रतीक बन चुकी हैं और हथियारों का व्यापार आर्थिक उन्नति का सूचक। इस वैश्विक उन्माद के बीच प्रश्न यह नहीं रह गया है कि कौन जीतेगा, बल्कि यह है कि मनुष्य बचेगा भी या नहीं?

ऐसे समय में सच्चिदानन्द सिन्हा की पुस्तक 'निहत्था पैगम्बर' (अनआर्म्ड प्रोफेट) गाँधी पर लिखी गयी केवल एक और पुस्तक नहीं रह जाती। वह युद्धग्रस्त सभ्यता के सामने एक नैतिक प्रतिपक्ष के रूप में खड़ी होती है। यह पुस्तक गाँधी को इतिहास की मूर्ति बनाकर पूजने का आग्रह नहीं करती, बल्कि उन्हें हमारे समय की हिंसक राजनीति से सीधे टकराती हुई नैतिक चेतना के रूप में सामने रखती है।

सच्चिदा जी का लेखन भारतीय बौद्धिक परम्परा में इसीलिए अलग और विशिष्ट है क्योंकि वे किसी एक विषय या अनुशासन में सीमित नहीं रहे। कला, संस्कृति, समाजवाद, राष्ट्रवाद, कृषि, शहरीकरण और सत्ता–इन सबको वे अलग-अलग नहीं, बल्कि एक ही सभ्यतागत संकट की विभिन्न अभिव्यक्तियों के रूप में देखते हैं। उनकी समूची बौद्धिक यात्रा इस निष्कर्ष की ओर बढ़ती है कि आधुनिक सभ्यता का संकट मूलतः नैतिक संकट है। तकनीक, विज्ञान और राजनीति ने जिस गति से शक्ति अर्जित की है, उसी अनुपात में करुणा, संयम और विवेक का क्षरण हुआ है।

उनकी प्रारम्भिक कृतियों में कला और संस्कृति को विलासिता नहीं, बल्कि जीवन की बुनियादी आवश्यकता के रूप में देखा गया। उनकी बौद्धिक यात्रा कला से शुरू होकर सभ्यता, संस्कृति, राजनीति और स्वतन्त्रता तक फैलती है। वे कला को विलासिता नहीं, बल्कि जीवन की बुनियादी आवश्यकता मानते हैं। वे बताते हैं कि मनुष्य कला के बिना जीवित तो रह सकता है, पर मनुष्य बना नहीं रह सकता। विज्ञान और तकनीक जीवन को सुविधाजनक बना सकते हैं, लेकिन वे वह काम नहीं कर सकते जो कला करती है–मनुष्य के भीतर सन्तुलन, संवेदना और सौन्दर्यबोध पैदा करना। पश्चिमी कला आन्दोलनों की आलोचनात्मक समीक्षा करते हुए वे भारतीय कला की उस परम्परा को रेखांकित करते हैं, जहाँ सृजन श्रम से अधिक आनन्द और समर्पण का रूप है। संस्कृति को वे सामाजिक सजावट नहीं, बल्कि हिंसा पर नियन्त्रण की जैविक व्यवस्था मानते हैं। कला से आगे बढ़ते हुए उनका चिन्तन संस्कृति को जीवन-रक्षा की जैविक जरूरत के रूप में परिभाषित करता है। वे वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक शोधों के आधार पर बताते हैं कि मनुष्य में हिंसा रोकने का कोई प्राकृतिक तन्त्र नहीं है; संस्कृति उसी कमी की पूर्ति करती है। इस दृष्टि से संस्कृति नैतिकता, संयम और सह-अस्तित्व की व्यवस्था बन जाती है। यह विचार संस्कृति को परम्परा के बोझ से मुक्त कर मानव सन्तुलन की प्रणाली के रूप में स्थापित करता है।

राष्ट्रवाद पर विचार करते हुए वे आधुनिक राष्ट्र-राज्य की हिंसक संरचना को उजागर करते हैं। यूरोप और अमेरिका के उदाहरणों के माध्यम से वे दिखाते हैं कि आधुनिक राष्ट्रवाद नस्लवाद, उपनिवेशवाद और संसाधनों की लूट पर खड़ा हुआ है। इसके विपरीत भारतीय परम्परा में राष्ट्रबोध सांस्कृतिक और आध्यात्मिक निरन्तरता से जुड़ा रहा है। उनके लिए राष्ट्रवाद तब घातक हो जाता है जब वह नैतिकता से कटकर केवल शक्ति-प्रदर्शन का माध्यम बन जाता है।

राजनीति और समाज पर उनका दृष्टिकोण इसी धारा को आगे बढ़ाता है। वे मानते हैं कि समाजवाद केवल आर्थिक विचार नहीं, बल्कि सांस्कृतिक परियोजना भी है। राजनीति यदि संस्कृति से कट जाती है तो वह केवल सत्ता बन जाती है, और संस्कृति यदि सामाजिक न्याय से कट जाती है तो वह सौन्दर्यशास्त्र तक सिमट जाती है। उनके लिए नैतिक समाज तभी सम्भव है जब कला, संस्कृति और सत्ता के बीच सन्तुलन बना रहे।

राष्ट्रवाद पर उनका चिन्तन आधुनिक राष्ट्र-राज्य की हिंसक और शोषक संरचना की आलोचना करता है। वे दिखाते हैं कि यूरोप और अमेरिका में राष्ट्रवाद नस्लवाद और संसाधनों की लूट से जुड़ा रहा है, जबकि भारतीय राष्ट्रबोध सांस्कृतिक और आध्यात्मिक निरन्तरता से उपजा है। इस तरह वे राष्ट्र और राष्ट्रवाद के बीच के सूक्ष्म अन्तर को स्पष्ट करते हैं।

स्वतन्त्रता की अवधारणा को वे वैश्विक इतिहास के लम्बे संघर्षों से जोड़ते हैं। उनका निष्कर्ष है कि मानव इतिहास की सबसे प्रेरक शक्ति आजादी की आकाँक्षा रही है, और यह कभी सत्ता की कृपा से नहीं, बल्कि जनसंघर्ष से प्राप्त हुई है। आर्थिक विकास पर विचार करते हुए वे बताते हैं कि केन्द्रीकरण और अन्धी उत्पादन-दौड़ ने प्रकृति और मनुष्य दोनों को नुकसान पहुँचाया है। कृषि संकट और शहरीकरण उनके लिए आधुनिक सभ्यता के सबसे गहरे संकट हैं–बड़े शहर विकास के प्रतीक नहीं, बल्कि मानवीय विस्थापन और असन्तुलन के केन्द्र बनते जा रहे हैं।

हिंसा की राजनीति, चाहे वह वामपन्थी हो या राज्यसत्ता की, उनके चिन्तन में समान रूप से आलोचना का विषय है। वे आपातकाल और बाद की राजनीति का विश्लेषण करते हुए बताते हैं कि समाज की चुप्पी,

नौकरशाही और केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति ने लोकतन्त्र को कमजोर किया। उनका मानना है कि आधुनिक राष्ट्र अपने भीतर ही नये उपनिवेश रच रहे हैं, जहाँ गरीब, किसान और आदिवासी समुदाय सबसे अधिक शोषित हैं। उनकी समूची बौद्धिक यात्रा इस विश्वास पर टिकी है कि सभ्यता तभी बचेगी जब कला, संस्कृति, स्वतन्त्रता, विकेन्द्रीकरण और नैतिकता साथ-साथ चलें। उनका लेखन आज के तकनीक, राष्ट्रवाद और सत्ता-केन्द्रित समय में एक वैकल्पिक मानवीय मार्ग सुझाता है। वे हमें याद दिलाते हैं कि विकास केवल गति नहीं, दिशा भी है—और वह दिशा मानव स्वतन्त्रता, गरिमा और संवेदनशील जीवन की ओर होनी चाहिए।

कृषि संकट और शहरीकरण पर उनका चिन्तन आधुनिक विकास मॉडल की आत्मघाती प्रवृत्ति को सामने लाता है। बड़े शहर उनके अनुसार 'टिक-टिक करता बम' हैं, जहाँ मनुष्य प्रकृति और समाज दोनों से कट जाता है। खेती से उजड़े लोग सभ्यता के हाशिये पर धकेल दिए जाते हैं और विकास मानवता के विरुद्ध एक नये युद्ध का रूप ले लेता है। इस प्रकार युद्ध केवल सीमा पर लड़ी जाने वाली लड़ाई नहीं रह जाता; वह आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के भीतर फैल जाता है।

इसी बौद्धिक यात्रा का चरम बिन्दु 'निहत्था पैगम्बर' है। इस पुस्तक में सच्चिदानन्द सिन्हा गाँधी को नेता, राजनेता या रणनीतिक चतुर व्यक्ति के रूप में नहीं देखते। वे गाँधी को एक महापुरुष के रूप में समझते हैं—ऐसा महापुरुष जो समय-समय पर समाज की नैतिक चेतना को दिशा देने के लिए जन्म लेता है। उनकी दृष्टि में गाँधी ऐतिहासिक घटनाओं के नायक भर नहीं हैं, बल्कि उस नैतिक सत्ता के प्रतिनिधि हैं जो राज्य-सत्ता से कहीं अधिक गहरी और टिकाऊ होती है।

इतिहास में बुद्ध, ईसा, सुकरात और कबीर जैसे व्यक्तित्व इसी परम्परा की कड़ियाँ हैं। गाँधी उसी नैतिक परम्परा की आधुनिक अभिव्यक्ति हैं। सच्चिदानन्द सिन्हा गाँधी के सत्याग्रह के प्रयोगों या उनके राजनीतिक जीवन की उपलब्धियों की सूची नहीं बनाते, बल्कि उनकी पैगम्बरी भूमिका को रेखांकित करते हैं—उस स्रोत की खोज करते हैं जहाँ से करुणा, त्याग और अहिंसा की ऊर्जा निकलती है।

गाँधी की शक्ति उनके पास किसी हथियार में नहीं थी, बल्कि उनकी नैतिक अपील में थी। उन्होंने औपनिवेशिक सत्ता को केवल राजनीतिक रणनीति से नहीं, बल्कि सत्य और अहिंसा के नैतिक दबाव से पराजित किया। यही कारण है कि सच्चिदानन्द सिन्हा उन्हें बुद्ध के बाद सबसे बड़ा नैतिक प्रतिनिधि मानते हैं। उनका गाँधी इतिहास का जड़ प्रतीक नहीं, बल्कि जीवित नैतिक चेतना है।

आज जब दुनिया फिर से युद्ध की भाषा में सोचने लगी है, तब यह गाँधी और अधिक प्रासंगिक हो जाता है। आधुनिक युद्ध अब केवल सेनाओं तक सीमित नहीं है। वह आम नागरिकों, बच्चों, पर्यावरण और आने वाली पीढ़ियों को निगल रहा है। युद्ध अब सीमाओं का नहीं, जीवन की पूरी संरचना का संकट बन गया है। रक्षा बजट बढ़ते जा रहे हैं, जबकि शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए संसाधन घटते जा रहे हैं। देशों की प्रतिष्ठा उनकी सैन्य शक्ति से आँकी जाती है, न कि उनके नैतिक साहस से।

गाँधी इस पूरी सभ्यता के आलोचक थे। उनका मूल प्रश्न था—क्या हिंसा से प्राप्त जीत वास्तव में जीत होती है, या वह भविष्य के और बड़े विनाश का बीज बो देती है? आज यह प्रश्न और भी तीखा हो गया है। जब युद्ध को 'राष्ट्रहित' और 'सुरक्षा' के नाम पर वैध ठहराया जाता है, तब गाँधी की दृष्टि हमें यह समझने की जमीन देती है कि सच्ची सुरक्षा भय पैदा करने से नहीं, बल्कि विश्वास और सह-अस्तित्व से आती है।

यहीं सच्चिदानन्द सिन्हा की पुस्तक का असली महत्त्व सामने आता है। वे गाँधी को प्रशंसा या आलोचना की आसान श्रेणियों में नहीं बाँधते। वे न उन्हें देवता बनाते हैं, न साधारण मनुष्य। वे गाँधी की पैगम्बरी भूमिका को पहचानते हैं—ऐसी भूमिका जो सत्ता से नहीं, नैतिकता से जन्म लेती है। उनका गाँधी उस परम्परा का प्रतिनिधि है जहाँ महापुरुष समाज को आत्मविनाश से बचाने के लिए प्रकट होते हैं।

यह दृष्टि गाँधी पर लिखे गये विशाल साहित्य के बीच एक नयी और गहरी वैचारिक लकीर खींचती है। यह गाँधी को केवल अतीत की विजय के रूप में नहीं, बल्कि वर्तमान की आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत करती है। 'निहत्था पैगम्बर' इस प्रश्न को हमारे सामने रखती है कि क्या हम गाँधी को स्मृति-पूजन तक सीमित रखेंगे या उनके नैतिक साहस को समकालीन युद्ध और हिंसा के विरुद्ध सक्रिय विचार बना पाएँगे।

इस अर्थ में यह पुस्तक केवल गाँधी पर नहीं, बल्कि आधुनिक सभ्यता पर एक नैतिक टिप्पणी है। वह हमें याद दिलाती है कि इतिहास का असली संघर्ष हथियारों और सेनाओं के बीच नहीं होता, बल्कि नैतिकता और अमानवीयता के बीच होता है। सच्चिदानन्द सिन्हा का गाँधी इसी संघर्ष की आवाज है।

आज जब पूरी दुनिया युद्ध की भाषा बोल रही है, तब गाँधी को समझने से अधिक जरूरी है उस दृष्टि को समझना जिससे सच्चिदानन्द सिन्हा गाँधी को देखते हैं। क्योंकि यह दृष्टि हमें केवल अतीत की ओर नहीं ले जाती, बल्कि भविष्य के बारे में सोचने का साहस देती है। वह हमें याद दिलाती है कि मनुष्य केवल शक्ति का प्राणी नहीं है; वह विवेक और करुणा का प्राणी भी है।

इसलिए आज गाँधी की नहीं, बल्कि सच्चिदानन्द सिन्हा की उस खोज की जरूरत है जिसने गाँधी को इतिहास से निकालकर मानवता के नैतिक भविष्य से जोड़ दिया। 'निहत्था पैगम्बर' में उन्होंने केवल गाँधी को नहीं पढ़ा—उन्होंने हमारे समय को पढ़ा है। और शायद यही इस पुस्तक की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि वह हमें यह प्रश्न सौंपती है—

क्या हम फिर किसी निहत्थे पैगम्बर की बात सुनने को तैयार हैं, या हम केवल हथियारों की भाषा ही समझने के आदी हो चुके हैं?

युद्ध के इस उन्मादी समय में सच्चिदानन्द सिन्हा की वैचारिक विरासत हमें यह याद दिलाती है कि मानवता का भविष्य किसी नयी मिसाइल में नहीं, बल्कि उस नैतिक चेतना में है जिसे गाँधी ने जिया और जिसे उन्होंने शब्द दिये। यही 'निहत्था पैगम्बर' का अर्थ है और यही सच्चिदानन्द सिन्हा का सबसे बड़ा बौद्धिक योगदान।

किशन कालजयी

एक बड़े विद्वान सन्त का जाना

अरविन्द मोहन

सच्चिदानन्द सिन्हा जैसे विचारक और कर्मशील समाजवादी के जीवन-लेखन का सार तो विलक्षण है ही, उनका व्यक्तित्व भी विद्वान और सन्त– दोनों रूपों में विरल था। उनका जीवन अध्ययन, राजनीतिक सक्रियता और साधु-सरीखी सादगी का अद्भुत संगम था। कला और संस्कृति से आरम्भ होकर उनका चिन्तन समाज, राष्ट्रवाद, जाति, कृषि, सत्ता और मानव स्वतन्त्रता तक फैला। उन्होंने सत्ता और प्रतिष्ठा से दूरी रखकर विकेन्द्रीकरण, विविधता और नैतिकता को जीवन-मूल्य बनाया। उनका जाना केवल एक व्यक्ति की विदाई नहीं, बल्कि एक पूरे वैचारिक युग की अपूरणीय क्षति है।

लेखक वरिष्ठ पत्रकार, चिन्तक और 'सच्चिदानन्द सिन्हा रचनावली' के सम्पादक हैं।
+919811826111
arvindmohan2000@yahoo.com

यह लेखक अपना सौभाग्य मानता है कि उसे सच्चिदानन्द सिन्हा के साथ कई वर्षों तक निकट रहने, उनके गहरे सम्पर्क में चार दशकों से अधिक समय बिताने, उनके रचना-कर्म, राजनीतिक कर्म और साधु-जैसे जीवन को बहुत पास से देखने-समझने का अवसर मिला। उनका स्नेह मिला, हर प्रश्न पर स्पष्ट उत्तर मिला और उनके आचरण के विविध पक्षों को जानने का अवसर मिला। निश्चय ही यह सौभाग्य केवल इस लेखक तक सीमित नहीं था। अविवाहित सच्चिदा जी का एक बड़ा परिवार था–जिसे उन्होंने अपने राजनीतिक, सामाजिक और लेखकीय कर्मों से और व्यापक बनाया। उनके लेखन और चिन्तन से लाभान्वित होने वालों की संख्या का अनुमान लगाना कठिन है, क्योंकि पिछले पचास वर्षों से उनका लिखा बड़े अखबारों, पत्रिकाओं और जन आन्दोलनों के माध्यम से व्यापक रूप से पढ़ा और बाँटा गया। हिन्दी पट्टी की कम-से-कम दो पीढ़ियों के वैचारिक गठन में जिन व्यक्तियों की निर्णायक भूमिका रही है, उनमें सच्चिदानन्द सिन्हा भी अग्रणी रहे हैं।

इस लेखक के मत में बीते लम्बे समय में समाज विज्ञान के क्षेत्रों में उनसे बड़ा विद्वान शायद ही कोई रहा हो। राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, समाजशास्त्र और नृविज्ञान ही नहीं, दर्शन, कला, संस्कृति, मानव मनोविज्ञान, सौन्दर्यशास्त्र और धर्म के क्षेत्रों में भी उनका अध्ययन किसी को भी चकित कर सकता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जिस समाजवादी धारा में उन्होंने राजनीति और लेखन किया, उसमें इतने विविध विषयों पर इतनी गम्भीरता से लिखने वाला दूसरा कोई नहीं हुआ। पर वे महज पाठक या पुनरुत्पादक विद्वान नहीं थे। वे एक विचारक थे–जो अध्ययन और सामाजिक-राजनीतिक सक्रियता से अर्जित अनुभवों के आधार पर जीवन के विविध पक्षों पर लगातार सोचते थे और सिद्धान्त तथा व्यवहार के बीच उभरते द्वन्द्वों का समाधान खोजते थे। इन्हीं आधारों पर उन्होंने व्यापक और गम्भीर लेखन किया।

बिना किसी अकादमिक संस्था से जुड़े, बिना किसी शोधवृत्ति या अनुदान के उन्होंने जितना अध्ययन और लेखन किया, वह सचमुच आश्चर्यजनक है। उनका सक्रिय और उच्च स्तरीय लेखन पचास वर्षों से अधिक अवधि में फैला हुआ है। उन्होंने अपना पूरा जीवन अध्ययन और सामाजिक-राजनीतिक कार्यों में लगाया। पर सच्चिदानन्द सिन्हा केवल लेखक या चिन्तनशील व्यक्ति ही नहीं थे; वे कर्मशील समाजवादी कार्यकर्ता भी थे। बहुत कम उम्र में समाजवादी आन्दोलन, विशेषकर जयप्रकाश नारायण के प्रभाव में आकर उन्होंने पूर्णकालिक राजनीतिक कार्यकर्ता बनने का निर्णय लिया और घर छोड़ दिया। शारीरिक श्रम का अनुभव लेने और आत्मनिर्भर रहने के लिए उन्होंने कोयला-पत्थर तोड़ने और बोझ उठाने जैसे काम किये।

इसी दौर में मजदूर संगठनों और अध्ययन शिविरों के माध्यम से उन्होंने गहन अध्ययन किया। प्रतिद्वन्द्वी मजदूर संगठनों के पुस्तकालयों

से किताबें लेकर पढ़ना और वैचारिक बहसों में हिस्सा लेना उनके बौद्धिक विकास का अहम् हिस्सा रहा। ऐसी ही एक बहस में की गयी अखबारी टिप्पणी पर जब डॉ. राममनोहर लोहिया की नजर पड़ी तो उन्होंने सच्चिदा जी की खोज-खबर ली और सीधे अपनी पत्रिका मैनकाइण्ड के सम्पादकीय मण्डल में शामिल कर लिया। इसके साथ ही वे मुम्बई से हैदराबाद चले आये। इस टोली के साथ रहना उनके बौद्धिक विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। श्रीलंकाई समाजवादी साथी हेक्टर अभयवर्धने से उनकी विशेष निकटता रही।

कुछ समय बाद खराब स्वास्थ्य, वैचारिक असहमति और पिता के निधन के बाद बहनों की जिम्मेदारी निभाने के लिए वे गाँव लौट आये। फिर 1969 में वे दिल्ली आये और समाजवादी पार्टी, समता संगठन तथा समाजवादी जन परिषद् के साथ सक्रिय राजनीति करते हुए मुख्यतः लेखन में लगे रहे। उनका अधिकांश गम्भीर लेखन इसी दौर का है। उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के चुनाव प्रभारी के रूप में भी काम किया और आपातकाल के समय बड़ौदा डायनामाइट केस में बन्द जॉर्ज फर्नांडीस के 1977 के मुजफ्फरपुर चुनाव के प्रभारी भी रहे। आपातकाल के दौरान दिल्ली में भूमिगत रहते हुए उन्होंने जितना सम्भव था, उतना राजनीतिक काम किया।

करीब डेढ़ दशक दिल्ली में रहने के बाद जब उन्हें लगा कि बढ़ते खर्च के लिए ऐसे काम करने पड़ेंगे जिनमें समझौते करने होंगे, तो वे अपने गाँव मणिका (मुजफ्फरपुर) लौट गये। गाँव उनके लिए केवल वैचारिक आकर्षण नहीं था, बल्कि व्यावहारिक जीवन का आधार भी था। अत्यन्त समृद्ध पारिवारिक पृष्ठभूमि होने के बावजूद उन्हें भौतिक साधनों से कोई विशेष लगाव नहीं था। वे व्यवहार में ऋषि-मुनि जैसा जीवन जीते थे—गाँधी की तरह न्यूनतम साधनों में। उन्होंने विवाह नहीं किया, पर परिवार उन्हें प्रिय था। वे स्वयं अपने जीवन से एक आदर्श प्रस्तुत करते थे, लेकिन किसी पर उसे थोपते नहीं थे। वे जो लिखते थे, उसे जीने का प्रयास करते थे। इसी कारण बाद के वर्षों में उनके लेखन में पर्यावरण और प्रदूषण का प्रश्न केन्द्रीय हो गया।

शुरुआत में वे मार्क्सवादी थे और रोजा लक्जमबर्ग तथा जयप्रकाश नारायण की प्रेरणा को महत्त्व देते थे। धीरे-धीरे उन पर गाँधी का रंग गहराता गया। उनकी किताबों और लेखों से हम जिस सच्चिदानन्द सिन्हा को जानते हैं, वह मुख्यतः लेखक और विचारक है। पर उनके राजनीतिक कर्म और साधु जीवन की छवि उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। आश्चर्य यह है कि इतने विविध विषयों पर लिखने के बावजूद उनके लेखन का स्तर कहीं हल्का नहीं पड़ता। जैसे-जैसे पाठक उन्हें पढ़ता जाता है, उनकी समग्र दृष्टि का विस्तार सामने आता जाता है।

उनका प्रारम्भिक लेखन अँग्रेजी में था। बाद में उन्होंने हिन्दी में महत्त्वपूर्ण किताबें लिखीं—जैसे जिन्दगी सभ्यता के हाशिये पर, संस्कृति विमर्श और कैपिटल का चौथा खण्ड। वे फ्रेंच और जर्मन भाषाएँ भी जानते थे। संस्कृत उन्होंने औपचारिक रूप से नहीं पढ़ी थी, फिर भी शब्दकोश के सहारे पाली-प्राकृत और आचार्य नरेन्द्र देव की कठिन भाषा को समझने में उन्हें कठिनाई नहीं हुई।

उनका लेखन केवल अकादमिक नहीं था। वे राजनीतिक टिप्पणीकार, प्रशिक्षक और आन्दोलनकारी लेखक भी थे। समाजवादी कार्यकर्ताओं के लिए उन्होंने प्रशिक्षण सामग्री तैयार की। अखबारी लेखन भी उन्होंने केवल आजीविका के लिए नहीं किया; हर लेख किसी बड़े प्रश्न को उठाने और स्पष्ट करने की कोशिश था। भूमण्डलीकरण पर उनका लेखन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। छोटे गाँव में रहते हुए भी उन्होंने भूमण्डलीकरण की तीखी आलोचना की और उसके विकल्प सुझाये—जो विविधता, टिकाऊपन और विकेन्द्रीकरण पर आधारित थे।

उनके लिए विविधता का सम्मान, केन्द्रीकरण का विरोध और टिकाऊ विकास केवल नीतियाँ नहीं, बल्कि जीवन-मूल्य थे। समता, स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र, मानवाधिकार, अहिंसा, सत्य और निरस्त्रीकरण उनके चिन्तन के केन्द्रीय तत्त्व थे। कला, संस्कृति और इतिहास पर लिखते समय भी वे इन्हीं मूल्यों को आधार बनाते थे। वे शहरीकरण को केन्द्रीकरण की प्रक्रिया मानते थे और उसके दुष्परिणामों को उजागर करते थे।

उन्होंने जाति-व्यवस्था, विकास मॉडल, खेती-किसानी की दुर्दशा, आन्तरिक उपनिवेश, मार्क्सवाद, गठबन्धन की राजनीति और वैश्विक स्वतन्त्रता संघर्षों पर विस्तार से लिखा। इस अर्थ में उन्होंने समाजवादी धारा के भीतर सबसे व्यापक लेखन किया। उनके लेखन में गाँधी-लोहिया की परम्परा आगे बढ़ती है और कई जगह उससे आगे निकलती है।

लगभग पचहत्तर वर्षों के सार्वजनिक जीवन में उन्होंने कोई पद या पुरस्कार स्वीकार नहीं किया। कई बार बिना पूछे घोषित किए गये सम्मान उन्हें असहज करते थे। उनकी किताबों का प्रकाशन भी अनियमित ढंग से हुआ—कभी बड़े प्रकाशकों से, कभी छोटे से। उन्होंने कभी प्रचार या समीक्षा की माँग नहीं की। उनके लेखन में कहीं-कहीं दोहराव मिलता है, जो इतने लम्बे और सक्रिय जीवन में स्वाभाविक है।

सच्चिदानन्द सिन्हा का समकालीन लेखकों, पत्रकारों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों से गहरा संवाद था। रघुवीर सहाय, निर्मल वर्मा, प्रयाग शुक्ल, गिरिधर राठी, राजकिशोर, ओम थानवी जैसे अनेक रचनाकारों से उनका आत्मीय रिश्ता रहा। कला जगत् में रामकुमार, कृष्ण खन्ना और स्वामीनाथन जैसे कलाकारों से उनका संवाद रहा। कृष्ण खन्ना के आग्रह पर उन्होंने अरूप और अकार जैसी पुस्तक लिखी, जो कला-चिन्तन का अनोखा उदाहरण है।

सच्चिदानन्द सिन्हा केवल विद्वान नहीं थे, वे सन्त-सरीखे व्यक्ति थे। उनका जीवन सादगी, सत्य और वैचारिक प्रतिबद्धता का उदाहरण था। उन्होंने सत्ता, पद और प्रतिष्ठा से दूरी बनाये रखी और ज्ञान, श्रम और विचार को अपना मार्ग बनाया। उनका जाना केवल एक व्यक्ति का जाना नहीं है, बल्कि एक पूरे वैचारिक युग की क्षति है। आज के समय में, जब विचार और नैतिकता दोनों संकट में हैं, सच्चिदानन्द सिन्हा का जीवन और लेखन हमें यह याद दिलाता है कि राजनीति केवल सत्ता का खेल नहीं, बल्कि जीवन को अधिक मानवीय बनाने का प्रयास है।

उनकी स्मृति हमें यह सिखाती है कि सच्चा विद्वान वही है जो ज्ञान को जीवन में उतारे और जीवन को विचार में ढाले। सच्चिदानन्द सिन्हा इसी अर्थ में एक बड़े विद्वान ही नहीं, एक सन्त भी थे।

सच्चिदानन्द सिन्हा की वैचारिक यात्रा का आरम्भ कला और संस्कृति से होता है और धीरे-धीरे समाज, राजनीति, राष्ट्रवाद, आजादी, कृषि, शहर, जाति और समाजवाद के बुनियादी प्रश्नों तक पहुँचता है। उनकी पहली महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'केयोस एण्ड क्रियेशन' (हिन्दी अनुवादः